# शोध का प्रथम रोमांच

**पी.सी. वैद्य**

दो-तीन माह में 'भारत छोड़ो' आन्दोलन की व्यापकता कम हो गई। शैक्षणिक संस्थान वापस खुलने लगे और अक्टूबर 1942 में तो बनारस हिन्दु युनिवर्सिटी भी शुरू हो गई।

आज नेपाल में राजा खुद शासन कर रहे हैं, और उनको मदद करने के लिए संसद जैसी संस्था की भी रचना हुई है। 1940-50 के दशक में नेपाल के राजा के पास नाम मात्र की सत्ता थी। प्रमुख सत्ता तो वंश परम्परा से नियुक्त मंत्रिओं की रहती थी। ये मंत्री 'राणा' परिवार से आते थे। असल में तो नेपाल में राजा का राज्य नहीं पर इन राणाओं का राज्य चलता था। ये राणा परिवार के युवा नेपाल की शालाओं में पढ़ाई के बाद बनारस हिन्दु युनिवर्सिटी की प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर के आगे की पढ़ाई के लिए बनारस आते थे। ऐसे एक नेपाली

राणा युवक को गणित और विज्ञान पढ़ाने की ट्यूशन मुझे मिल गई।

महीने के पच्चीस रुपए और हर रोज़ हलवा व मीठा दूध नाश्ते में। बदले में मुझे भौतिक, रसायन, जीव-विज्ञान और गणित (कॉलेज के प्रथम साल के लिए) पढ़ाना था। अभी के सन्दर्भ में पच्चीस रुपए बहुत कम रकम लग सकती है परन्तु तब मेरा मासिक खर्च 40 रुपए होता था। इसलिए ट्यूशन की यह आय तो बहुत ज़्यादा लगती थी, मगर ये बादशाही ठाठ बहुत देर तक न चली। डेढ़ महीने यह पढ़ाई चली होगी और वह विद्यार्थी बीमार हो गया। वैसे तो थोड़ा ज़ुकाम था मगर बनारस के डॉक्टर को लगा कि अच्छा धनवान राणा परिवार हाथ आया है। इसलिए उन्होंने परिवार को मशवरा दिया कि मरीज़ को जलवायु परिवर्तन के लिए ले जाना चाहिए और साथ में डॉक्टर को भी ले जाना चाहिए, ऐसा ही हुआ! मरीज़ और डॉक्टर जलवायु परिवर्तन के लिए निकल गए और मरीज़ के मास्टर की बादशाही आय बन्द हो गई!

फरवरी 1943 में नेताओं की गिरफ्तारी और नेतृत्व-विहीन जनता के आन्दोलन को छह महीने हुए। आन्दोलन के दौरान जनता ने हिंसा का मार्ग अपनाया मगर सामने अँग्रेज़ी हुकूमत ने सवाई हिंसा अपनाई। इस हिंसा से खुद को बहुत दर्द हुआ है और उसके लिए वे 21 दिन का उपवास करने वाले हैं, ऐसा खत गाँधीजी ने वाइसरॉय को लिखा और वो खत अखबारों में प्रकाशित हुआ। तब पूरे देश की साँस थम गई। 8 जनवरी से गाँधीजी ने उपवास शुरू किया। उपवास के 13 दिन बाद उनका स्वास्थ्य बिगड़ा। तेरहवें से सोलहवें दिन तक के दिन बहुत खराब गए। उन दिनों मैं इन खबरों की वजह से अखबार खरीदता था। बनारस का हिन्दी दैनिक 'आज' हर रोज़ शाम को प्रकाशित होता था। मैं दोपहर के तीन बजे से ही आउट-हाउस के बाहर वृक्ष के नीचे समाचार-पत्र की राह में चक्कर काटते हुए यह सोचता कि कब अखबार आए और कब उपवास के समाचार मिलें। ज़्यादातर समझदार नागरिकों में मानसिक तनाव की यही स्थिति थी। इन तनाव के दौरान पेड़ के नीचे अखबार की राह देखते हुए चक्कर काटते-काटते मेरे शोध के विषय में एक महत्वपूर्ण ख्याल आया मुझे।

आइंस्टाइन ने सापेक्षता के सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए गुरुत्वाकर्षण का नया नियम दिया। ये नए नियम के समीकरण बहुत अटपटे हैं। 1917 में श्वार्ज़शील्ड (Schwarzschild) नाम के गणितशास्त्री ने सूर्य के गुरुत्वाकर्षण का वर्णन कर इस समीकरण का हल निकाला। श्वार्ज़शील्ड के हल में सूर्य में से निकलते ऊर्जा के प्रचण्ड प्रवाह को गिनती में नहीं लिया था, मगर आइंस्टाइन के सिद्धान्त के मुताबिक ऊर्जा और पदार्थ परस्पर रूपान्तरित हो सकते हैं; और अगर पदार्थ का

अपना गुरुत्वाकर्षण है तो फिर ऊर्जा का भी होगा ही। सूर्य में से निकलते प्रकाश (ऊर्जा) का भी गुरुत्वाकर्षण बल रहेगा ही और उसे गिनती में लिए बिना सूर्य के गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र के समीकरण प्राप्त करें तो यह गणित की दृष्टि से अधूरा होगा। यद्यपि सूर्य के द्रव्य (संहति) की तुलना में निकलती ऊर्जा का नाप अत्यन्त कम होगा और इसलिए श्वार्ज़शील्ड के समीकरणों से जो भविष्यवाणी हुई थी, उसमें और अवलोकन में स्थूल रूप में कोई अन्तर नहीं दिखाई देता था।

गणित का यह अनसुलझा प्रश्न - सूर्य को एक प्रकाशित तारे के रूप में देखते हुए (उस में से निकलती ऊर्जा को ध्यान में रखते हुए) सूर्य के गुरुत्वाकर्षण के लिए आइंस्टाइन के समीकरणों का हल ढूँढ़ना – यही मेरी शोध का विषय था।

आइंस्टाइन के सिद्धान्त की एक अन्य विशेषता है। गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव में कोई पदार्थ गति करता है तो उसका गति-मार्ग तीन प्रकार का हो सकता है:

1. मार्ग के दो बिन्दुओं के बीच का अन्तर हमेशा धन आए ऐसी धन रेखा, अथवा
2. वह अन्तर हमेशा ऋण आए ऐसी ऋण रेखा, अथवा
3. वह अन्तर हमेशा शून्य हो ऐसी शून्य रेखा।

अब अन्तर तो धन ही होगा न! इसलिए पदार्थ का गति मार्ग धन रेखा ही हो सकता है। ऐसी मान्यता

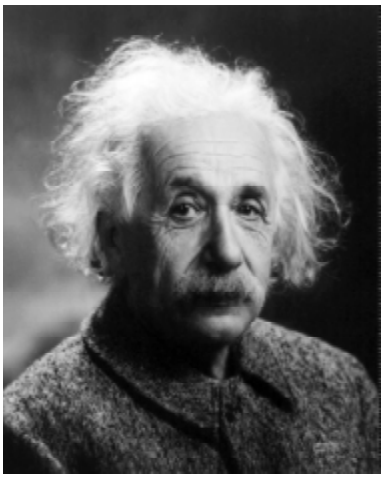

आइंस्टाइन

श्वार्ज़शील्ड

के साथ कई शोध हुए थे। हम भी प्रकाशमान सूर्य में से धन रेखा में द्रव बह रहा हो इस मान्यता के साथ समीकरण हल करने की कोशिश तीन महीने से कर रहे थे परन्तु कोई तालमेल बैठ नहीं रहा था।

गाँधीजी के उपवास के समाचार जानने की उत्सुकता में वृक्ष के आस-पास चक्कर काटते मुझे ख्याल आया कि द्रव के लिए तो गति-मार्ग धन रेखा हो सकती है परन्तु प्रकाश की गति तो सभी पदार्थों की गति से ज़्यादा होती है। आइंस्टाइन के 1905 के सापेक्षता के पहले सिद्धान्त के मुताबिक तो प्रकाश का गति-मार्ग शून्य रेखा होना चाहिए।

एक बार सही दिशा सूझने पर मेरे काम ने गति पकड़ी और जितने भी अटपटे समीकरण मुझे परेशान कर रहे थे वे सब उचित दिशा मिलने पर अपने आप व्यवस्थित होने लगे। एक तरफ गाँधीजी की सेहत में सुधार आने लगा, उनका उपवास शान्ति-पूर्वक पूरा हुआ। और दूसरी तरफ हमने सूर्य प्रकाश को गिनती में लेकर आइंस्टाइन के समीकरण का एक सुन्दर हल पा लिया।

इस तरह शोध का यह मेरा पहला आस्वादन था और उसी दिन से मानो मेरा व्यक्तित्व ही बदल गया। बनारस के नौ महीने के निवास के दौरान प्रोफेसर नार्लीकर की देखरेख में मैंने जो शिक्षा पाई उसके फल मैंने जीवन भर पाए हैं।

प्रोफेसर नार्लीकर को मैं कहता था की लोग परलोक की चिन्ता से काशी जाते हैं जबकि मैंने तो इसी लोक का ज़िन्दगी भर चले उतना पाथेय काशी की नौ मास की यात्रा से पा लिया है।

## पीएच.डी. मायने क्या?

नौ महीने बनारस में शोध करके आया और सूरत में पढ़ाने का काम शुरू किया तो एक सवाल मन में लगातार उठता था। गणित या विज्ञान में शोध करने वाले को खुद तो मज़ा आता है, यह काम मुख्यतः अपने आनन्द के लिए शुरू होता है - परन्तु आप जिस शोध पर काम कर रहे हैं उसके बारे में विद्वानों की राय जानना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। विद्वानों के समक्ष अपना काम प्रस्तुत करने के दो तरीके हैं। एक तो आप अपनी शोध के निष्कर्ष एक आलेख के रूप में विश्व-विद्यालय जैसी किसी संस्था को सौंप दें। या फिर अपने निष्कर्ष शोध पत्रिकाओं में प्रकाशित करवाएँ।

मेरे लिए ये दोनों रास्ते अनुकूल नहीं थे। बनारस में मैं उस विश्व-विद्यालय का छात्र नहीं था, मैंने प्रोफेसर नार्लीकर से निजी रूप से नौ महीने प्रशिक्षण लिया था। इस वजह से युनिवर्सिटी के नियम-कानून के अनुसार शोध-निबन्ध प्रस्तुत करने के लिए चार सत्र पढ़ाई करने का मौका मुझे नहीं मिला था। इसलिए बनारस या बॉम्बे विश्वविद्यालय, दोनों जगह मैं पीएच.डी. थीसिस प्रस्तुत नहीं कर

सकता था। और दूसरी तरफ पत्रिकाओं में लेख प्रकाशित करवाने में, दूसरे विश्व युद्ध के कारण उत्पन्न परिस्थितियों की वजह से, अवरोध पैदा हो गया था।

बैंगलोर से निकलने वाली करंट साइंस पत्रिका के जून, 1943 अंक में मेरी प्रमुख शोध 'आइंस्टाइन के नियमों के अनुसार प्रकाशित तारों का गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र' पर संक्षिप्त लेख प्रकाशित हुआ। परन्तु इस विषय पर मेरा विस्तृत आलेख भी तैयार था। पर उसे प्रकाशित कौन करे? विश्वयुद्ध के कारण हिन्दुस्तान के बाहर प्रकाशित होने का तो सवाल ही नहीं था। और भारत में ऐसे जवाब मिलते थेः "महंगाई की वजह से गणित के इस तरह के लेख छापना हमारे लिए सम्भव नहीं है।" चार साल सूरत में रहते हुए इस परिस्थिति में से रास्ता निकालने के मैंने बहुत-से प्रयास किए। एक सहृदय दोस्त ने सुझाव दिया - पैसों का जुगाड़ हो जाएगा, इंग्लैंड या अमरीका ही चले जाना चाहिए। उन दिनों तो रोज़ रात इंग्लैंड पर हिटलर की बम-वर्षा होती थी इसलिए वहाँ जाने का तो कोई सवाल ही नहीं था। 1943 में मैंने अमरीका की प्रिंसटन युनिवर्सिटी में पीएच.डी. में दाखिला लेने के लिए अर्ज़ी भेजी। मुझे तुरन्त ही दाखिला तो मिल गया परन्तु साथ ही शर्त थी- "इस समय हमारे सब प्रोफेसर युद्ध में ड्यूटी बजा रहे हैं इसलिए आप सितम्बर 1944 में प्रवेश लें।" इस एक साल में बहुत-से बदलाव हो गए थे। मेरे वो मित्र अब पैसों की मदद कर पाएँ यह सम्भव नहीं था। इसलिए मामला यहीं अटक गया।

विश्वयुद्ध की वजह से प्रोफेसर होमी भाभा कैम्ब्रिज से भारत आ गए थे और बैंगलोर में उन्होंने अपना शोधकार्य शुरू किया था। 1944-45 में मैंने अखबार में पढ़ा कि प्रोफेसर भाभा टाटा ट्रस्ट की मदद से बम्बई में गणित और भौतिकी में मूलभूत शोध के लिए एक संस्था शुरू करने का प्रयास कर रहे हैं। यह खबर पढ़कर मुझे बहुत खुशी हुई और मेरे अपने शोध को आगे बढ़ाने के दो-तीन तरीके सूझे। डॉ. भाभा के साथ पत्र व्यवहार करके उनकी इस नई संस्था से जुड़ने का प्रयास करना और अगर वो सम्भव न हो तो बम्बई के किसी कॉलेज में नौकरी का प्रयत्न करना ताकि डॉ. भाभा के साथ पीएच.डी. रजिस्ट्रेशन सम्भव बन पाए। संयोग अनुकूल होते हुए मुझे इन दोनों में आंशिक सफलता मिली।

भारतीय विद्याभवन के बम्बई साइंस कॉलेज में गणित के प्रोफेसर की जगह खाली हुई तो मैंने अर्ज़ी कर दी। कन्हैयालाल मुंशी के बंगले पर हमारा इंटरव्यू हुआ। उन दिनों गणित में शोध किया हो ऐसे नवयुवक काफी दुर्लभ थे इसलिए मुझे तुरन्त ही नियुक्त कर दिया गया। नियुक्ति पत्र लेकर मैं अपने प्राचार्य शाह से मिला तो उन्होंने कहा, "हमारे एस.टी.बी. कॉलेज से

वो भवन्स कॉलेज ऐसा क्या अच्छा है कि तुम वहाँ जाना चाहते हो?" मैंने अपने मन की बात बताई। बम्बई जाऊँ तो प्रो. भाभा के साथ रजिस्टर होकर अपना पीएच.डी. का काम पूरा कर सकता हूँ। शाह साहब ने कहा कि उसके लिए बम्बई जाने की कोई ज़रूरत नहीं है। यहीं रहते हुए तुम्हारा बम्बई युनिवर्सिटी में पीएच.डी. रजिस्ट्रेशन करा देता हूँ।

प्राचार्य शाह के सुझाव के अनुसार मैंने बम्बई युनिवर्सिटी के रजिस्ट्रार को अर्ज़ी भेजी और दो महीने में वहाँ से जवाब मिल गया। पत्र के अनुसार मेरी विशिष्ट परिस्थितियों और मैंने जो शोधकार्य किया था उसे ध्यान में रखते हुए युनिवर्सिटी ने किसी भी मार्गदर्शक शिक्षक के बगैर पीएच.डी. के लिए सीधे रजिस्ट्रेशन की छूट दी। इतना ही नहीं परन्तु चार सत्र की बजाय दो सत्र में थीसिस सुपुर्द करने की भी छूट दी। इस तरह जून 1946 में बम्बई युनिवर्सिटी में व्यवस्थित तौर पर पीएच.डी. विद्यार्थी के रूप में दाखिला हो गया। और इस सबके लिए मुझे भवन्स कॉलेज भी नहीं जाना पड़ा।

यह सब चल रहा था तब भी मैं डॉ. भाभा के साथ सीधा सम्पर्क करने का प्रयास तो कर ही रहा था। बचपन में मैं भावनगर में अखाड़े में जाता था, उस समय का एक मित्र डॉ. नौतम भट्ट बैंगलोर में इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइंस में प्रोफेसर है ऐसा सुना था। यही डॉ. एन.बी. भट्ट बाद में पिलानी इलेक्ट्रोनिक्स इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर बने और अन्त में डिफेन्स साइंस ऑर्गेनाइज़ेशन की सॉलिड स्टेट फिज़िक्स लेबोरेट्री के अध्यक्ष के रूप में रिटायर हुए।

डॉ. एन.बी. भट्ट ने मेरी डॉ. भाभा से मुलाकात करवाई। अब तक मैंने गुरुत्वाकर्षण के सिद्धान्त पर शोधकार्य किया था जिसमें मुख्यतः विरल समीकरणों और रीमानीय ज्यामिति का इस्तेमाल होता है। डॉ. भाभा का क्षेत्र तो परमाणु विज्ञान के सिद्धान्तों का था जिसके लिए आधुनिक बीजगणित और समुच्चय (sets) का उपयोग होता है। इसलिए इन नए विषयों के लिए डॉ. भाभा ने तीन किताबों का सुझाव दिया और कहा कि इनका अध्ययन करके मैं उन्हें छह महीने बाद फिर से मिलूँ।

इस तरह जून 1946 तक शोध के क्षेत्र में आगे बढ़ने के आशास्पद आसार दिखने लगे।

## मॉडर्न मेथ से परिचय

सूरत आया तब थीसिस कौन-सी युनिवर्सिटी में सौंपनी होगी इसके बारे में कोई स्पष्टता नहीं थी, फिर भी 'कर्मण्ये वाधिकारस्ते....' को न्याय देते हुए मैंने शोध निबन्ध की योजना बनाकर उसके अलग-अलग अध्याय लिखने का काम शुरू कर दिया। प्रोफेसर नार्लीकर के साथ पत्र व्यवहार जारी था। इसलिए जब जून 1946 में बम्बई

विश्वविद्यालय के सत्रों में शामिल होने की मंज़ूरी मिली तब तक थीसिस लिखने का मेरा काम पूरा हो गया था। इसलिए डॉ. भाभा द्वारा सुझाई गई पुस्तकों का एकचित्त अध्ययन कर पाया।

इनमें दो प्रमुख पुस्तकें थीं - Modern Algebra by A.A. Allen और Algebras and their mathematics by L.E. Sachson यानी कि आज हम जिसे 'नए गणित' के रूप में जानते हैं उस मॉडर्न मेथ का मुझे गहन अभ्यास करना था। आम तौर पर हम सबकी आदत परीक्षा के लिए पढ़ाई करने की होती है। मुझे तो कोई परीक्षा नहीं देनी थी, शोधकार्य के लिए ही पढ़ाई करनी थी। परीक्षा के लिए ज़रूरी होता है कि हम गणित का कोई प्रमेय पढ़ते हैं, उसके प्रमुख बिन्दु समझते हैं और फिर पुस्तक बन्द करके अपने मन से वही परिणाम प्राप्त करने की कोशिश करते हैं, सवाल को हल करने की कोशिश करते हैं। परन्तु इस प्रक्रिया में तो हम पुस्तक के लेखक ने जो किया उसकी पुनरावृत्ति मात्र करते हैं, अपने मन से उसमें कुछ नहीं जोड़ते।

जबकि शोध का अर्थ ही होता है कुछ नया जोड़ना। इसलिए खुद वो परिणाम हासिल करने की स्थिति में पहुँचने के बाद और आगे बढ़ना होता है। इस परिणाम को हासिल करने के लिए लेखक ने जिन मान्यताओं का सहारा लिया, वो वहाँ तक कैसे पहुँचा होगा? इन मान्यताओं/शर्तों को थोड़ा ढीला करें तो क्या होगा, ज़्यादा कड़क बनाएँ तो क्या होगा, इस परिणाम से मिलते-जुलते और कौन-से हल हम जानते हैं? ऐसे जिन अन्य उदाहरणों को हम जानते हैं उनका इस अभ्यास में क्या इस्तेमाल हो सकता है, ऐसे अनेक विशिष्ट पहलू शोध के लिए की जा रही पढ़ाई में जुड़ जाते हैं। स्पष्ट है कि अगर आपकी शोधकार्य की दिशा स्पष्ट हो तो उसके लिए की जा रही पढ़ाई ज़्यादा सहज और जल्दी हो जाती है।

देश की आज़ादी को लेकर जो तनाव चल रहे थे वो थोड़े कम हुए तो अगले शनिवार मैं डॉ. भाभा को मिलने बम्बई जा पाया। तब तक आज अत्यन्त प्रख्यात बन चुके टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामैंटल रिसर्च की स्थापना हो चुकी थी। पैडर रोड पर किराए के एक मकान में संस्थान का ऑफिस लगता और जब मैं मिलने गया तो स्टाफ में डॉ. भाभा और उनका स्टेनो, दो ही लोग थे। मुलाकात के अन्त में तय हुआ कि कॉलेज में छुट्टियाँ शुरू होते ही दो महीने के लिए इंस्टीट्यूट में शामिल हो जाऊँ। और उसके बाद अगर दोनों पक्ष को ठीक लगे तो कॉलेज से इस्तीफा देकर आगे के लिए इंस्टीट्यूट से जुड़ जाऊँ।

इस तरह मैं अप्रैल 1947 में छुट्टियों के दौरान टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फण्डामैंटल रिसर्च से जुड़ा। जून से कॉलेज से तीन महीने की बिना-तनख्वाह छुट्टी ली और अन्त में 1

अक्टूबर, 1947 को कॉलेज से इस्तीफा देकर पूर्णकालिक स्टाफ के रूप में टाटा इंस्टीट्यूट में शामिल हुआ। तब आज़ादी मिल चुकी थी और प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू की व्यक्तिगत देख-रेख में परमाणु विज्ञान का काम शुरू हुआ था। एटॉमिक एनर्जी कमीशन की व्यवस्थित स्थापना की पूर्व तैयारी के रूप में भारत सरकार ने टाटा इंस्टीट्यूट में भौतिक सिद्धान्त समूह (Theoretical Physics Group) बनाने का निर्णय लिया और इस समूह में वैज्ञानिक के रूप में सबसे पहली नियुक्ति मेरी थी।

## परमाणु विज्ञान

कोई भी पदार्थ अणुओं का बना हुआ है। रासायनिक प्रक्रिया में अणु हिस्सा लेते हैं। पानी के एक अणु में हाइड्रोजन के दो और ऑक्सीजन का एक परमाणु होता है। हरेक पदार्थ का अणु, परमाणुओं का बना होता है। एटम बॉम्ब को अक्सर हमारे अखबार अणु बॉम्ब कहते हैं जो सही नहीं है, उसके लिए सही पारिभाषिक शब्द परमाणु बॉम्ब है। अणु की रचना, यह रसायन शास्त्र का विषय है और रासायनिक क्रिया के ज़रिए अणुओं का विभाजन परमाणुओं में किया जा सकता है। परमाणु की रचना भौतिक शास्त्र का विषय है। परमाणु की रचना के विज्ञान को हम संक्षिप्त में परमाणु विज्ञान कहेंगे।

परमाणु की रचना के बारे में व्यवस्थित सोच-विचार नील्स बोह्र ने बीसवीं सदी के दूसरे दशक में शुरू किया। उसके अनुसार कोई भी परमाणु के केन्द्र में धन आवेश वाला नाभिक होता है, और उस नाभिक के आस-पास ऋण आवेशित इलेक्ट्रॉन घूमता है। धन और ऋण आवेशित कणों के बीच कूलम्ब के नियम के अनुसार आकर्षण बल होता है। और जैसे सूर्य व ग्रहों के बीच के आकर्षण बल के कारण ग्रह सूर्य के आस-पास घूमते हैं, उसी तरह नाभिक और इलेक्ट्रॉनों के बीच के कूलम्ब आकर्षण की वजह से इलेक्ट्रॉन नाभिक के आस-पास घूमते हैं। चूँकि पदार्थ के परमाणु का कुल विद्युत आवेश तो शून्य होता है, इसलिए नाभिक का धन विद्युत आवेश उसके आस-पास घूमते सब इलेक्ट्रॉन के ऋण

नील्स बोह्र

विद्युत आवेशों के योग जितना होना चाहिए।

नील्स बोह्र की इस परिकल्पना को जब सूक्ष्म गणितीय रूप दिया गया तो पता चला कि प्रकृति में ऋण आवेशित इलेक्ट्रॉन के साथ-साथ उतना ही धन आवेश रखते हुए कण (प्रोटॉन) का अस्तित्व होना चाहिए। इसलिए परमाणु के नाभिक में ये प्रोटॉन मौजूद होने चाहिए, नाभिक का धन आवेश इस प्रोटॉन के कारण ही है।

इससे एक नया प्रश्न खड़ा हो गया। यह प्रश्न समझने के लिए एक उदाहरण लें। हीलियम के परमाणु में नाभिक के आस-पास चार इलेक्ट्रॉन घूमते हैं। इसलिए उसके नाभिक में चार प्रोटॉन होना चाहिए (तो ही परमाणु का कुल विद्युत आवेश शून्य होगा)। परन्तु कूलम्ब के नियम के अनुसार धन और ऋण आवेश वाले कणों के बीच आकर्षण होगा, परन्तु अगर दोनों कण धन विद्युत आवेशित हों तो उनके बीच विकर्षण होगा यानी दोनों कण एक-दूसरे से दूर जाने की कोशिश करेंगे। तो फिर हीलियम के नाभिक में चार धन आवेशित प्रोटॉन एकसाथ कैसे रहेंगे? कूलम्ब के विकर्षण के नियम के अनुसार चारों प्रोटॉन अलग-अलग होकर बिखर जाने चाहिए। यह नया प्रश्न उठ खड़ा हुआ।

इसी प्रश्न को दूसरी तरह देखें – जिस परमाणु में एक से ज़्यादा इलेक्ट्रॉन हों उस परमाणु के केन्द्रक में एक से ज़्यादा प्रोटॉन होंगे। परन्तु इन प्रोटॉन के बीच विकर्षण होता है, तो फिर नाभिक एक साथ कैसे रह सकता है?

हाइड्रोजन गैस के अलावा हरेक पदार्थ के परमाणु में एक से ज़्यादा इलेक्ट्रॉन हैं - इतना ही नहीं परन्तु वज़नदार यानी अधिक घनत्व वाले पदार्थों जैसे कि लोहा, ताँबा, जस्ता वगैरह में अनेक इलेक्ट्रॉन होते हैं यानी कि दो, चार नहीं परन्तु अनेक प्रोटॉन, बिखरे बिना ऐसे पदार्थ के नाभिक में एक-दूसरे के साथ जमे रहते हैं! प्रश्न यह खड़ा होता है कि परमाणु के केन्द्रक के अन्दर कूलम्ब विकर्षण के सामने अनेक प्रोटॉन को एक साथ रखने वाला बल कौन-सा है?

केन्द्रक के अन्दर दो प्रोटॉन को उनके बीच के कूलम्ब विकर्षण के सामने आपस में पकड़े रखने वाले बल के बारे में गणितीय परिकल्पना युकावा नाम के जापानी वैज्ञानिक ने सन् 1935 में प्रस्तुत की। जैसे कूलम्ब के नियम के अनुसार विद्युत आकर्षण और विकर्षण बल के सन्दर्भ में प्रकृति में हमें इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन, ऐसे दो कण मिलते हैं; ऐसे ही युकावा-बल के सन्दर्भ में हमें धन और ऋण आवेश वाले दो प्राकृतिक कण मिलने चाहिए। युकावा के इन कणों को मिज़ोन कण का नाम दिया गया। शुद्ध गणितीय प्रयास से युकावा ने मिज़ोन नाम के कण का अस्तित्व स्थापित किया।

नाभिक के अन्दर प्रोटॉन को जकड़े रखे हुए इस युकावा बल का माप

युकावा

डॉ. भाभा

निकालना है तो नाभिक को तोड़ना पड़ेगा। और तभी इस बल के प्रतिनिधि मिज़ोन कण का अवलोकन सम्भव होगा। 1935 में युकावा ने इस परिकल्पना की घोषणा की। उसके कुछ समय बाद वैज्ञानिकों ने प्रयोग शालाओं में नाभिक का विभाजन किया और उस विभाजन के मलबे में से युकावा ने जिसकी भविष्यवाणी की थी, उस मिज़ोन कण को देखा गया। साथ ही उसके तुरन्त दो परिणाम सामने आए। एक शुभ परिणाम तो यह था कि कागज़-पेंसिल की मदद से मिज़ोन नाम के नैसर्गिक कण की खोज करने वाले युकावा को नोबल पुरस्कार मिला। दूसरा चिन्ताजनक परिणाम यह आया कि नाभिक के विभाजन की क्रिया को प्रयोगशाला के बदले एक बन्द व्यवस्था में सम्पन्न करें तो यह विनाशकारी एटम बॉम्ब भी बन सकता है।

ऐसे उत्तेजनापूर्ण दौर में डॉ. भाभा कैम्ब्रिज में भौतिक शास्त्र में शोधकार्य कर रहे थे। उन्हें युकावा के मिज़ोन कण के सिद्धान्त में खूब रुचि जागृत हुई और युकावा के गणितीय सिद्धान्त को आधुनिक बीजगणित का जामा पहनाकर उसे अच्छी तरह से विकसित किया। 1947 अप्रैल में जब मैं टाटा संस्थान गया तब उन्होंने मुझे मिज़ोन सिद्धान्त पर एक सवाल दिया। इस सवाल को सरल रूप से इस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है। किसी भी एक नाभिक के विभाजन में से या अन्य किसी तरह से मिज़ोन कण उत्पन्न होता है। और यह मिज़ोन कण प्रवास करते हुए किसी अन्य नाभिक के पास से गुज़रता है। तो इस दूसरे

नाभिक के विद्युत आवेश और मिज़ोन के विद्युत आवेश के बीच कूलम्ब के नियम के मुताबिक बल लगेगा। उस कूलम्ब बल के प्रभाव के कारण मिज़ोन का पथ कैसे बदलेगा, यह गणना मुझे करनी थी।

इसलिए मेरा पहला काम तो मिज़ोन के गुणा क्रम में असम-कर्मी नियम का पालन करे, ऐसा 6×6 का श्रेणिक (matrix) ढूँढ़ना था। ऐसे श्रेणिक की रचना करने के लिए बहुत-से सरल बीजगणितीय तरीके उपलब्ध थे। पर मैंने तो हाल ही में आधुनिक बीजगणित सीखा था। ऐसे सामान्य तरीकों की मुझे जानकारी ही नहीं थी। इस वजह से 'शुरू करो, गलती हुई तो फिर से शुरू करो' (trial and error) के तरीके से ही मैंने इसे ढूँढ़ना शुरू किया। मुझे याद है कि शाम को साढे सात बजे इस तरह शुरू किया, कितने ही अलग-अलग तरह के श्रेणिक लेकर, गुणाकार के नियम में बिठाने की कोशिश करते-करते रात तीन बजे उपयुक्त श्रेणिक ढूँढ़कर मैं आराम से सो पाया।

एक बार श्रेणिकों की रचना हो गई तो मिज़ोन के प्रवाह की गति का वर्णन करते हुए विकल समीकरण ढूँढ़ना सरल हो गया। ऐसे छह विकल समीकरण ढूँढ़ लेने के बाद मैं अपने परिचित धरातल पर आ गया। सापेक्षता पर शोधकार्य करते हुए विकल समीकरणों के साथ काम करने का मुझे खासा अनुभव था। ये छह समीकरण मिल जाने पर मेरा आधा काम तो पूरा हो गया!

परन्तु संयोग स्वरूप शेष आधा काम पूरा नहीं हो पाया। वो एक अलग किस्सा है।

---

**पी.सी. वैद्य** (23 मई 1918 - 12 मार्च 2010)**:** प्रसिद्ध गणितज्ञ व शिक्षाविद। आइंस्टाइन के गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त को समझाने वाली इनके द्वारा विकसित विधि 'वैद्य मेट्रिक' के नाम से जानी जाती है।

**गुजराती से अनुवादः राजेश खिंदरीः** 'संदर्भ' पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

*यह लेख गुजराती की सुगणितम पत्रिका में छपे पी.सी. वैद्य के संस्मरणों पर आधारित किताब 'चॉक एंड डस्टर' से साभार।*